

बुनियादी मुद्दों की अनदेखी का नतीजा है जेन-जी आंदोलन

25 जुलाई को शिक्षा मंत्री को आखिरकार इस्तीफा देना ही पड़ा। हफ्तों तक चले जेन-जी के प्रदर्शन और उसके बढ़ते प्रभाव के दबाव में आकर सरकार ने ऐसा फैसला लिया जिसे अभी तक असंभव माना जाता था। इस सरकार की छवि बातचीत को कमजोरी, जवाबदेही को राजनीतिक कायरता, तथा सवालों को बगावत मानने वाली सरकार की बन चुकी है। विरोध-प्रदर्शन तो दूर, राजनीतिक असहमति तथा आलोचना के दमन के लिए सरकारी मशीनरी के दुरुपयोग के लिए यह जानी जाती है। विरोधियों को बदनाम करने और उनके सवालों से ध्यान भटकाने के लिए मुख्यधारा के मीडिया को अनैतिक औज़ार की तरह उपयोग में लाया जाता है। इससे भी काम न बने तो उनका उत्पीड़न करने के लिए सरकार समर्थक दक्षिणपंथी तबक़े को बरगलाकर वो काम कराए जाते हैं जो सरकारी मशीनरी और मीडिया से भी न हो पाए। इस खैये ने जनता के एक बड़े हिस्से का अदालतों तक में भरोसा हिलाकर रख दिया है। सरकार के निशाने पर आने के बाद शायद अदालत भी संवैधानिक अधिकारों की रखवाली नहीं कर सकती है—ऐसी आशंका बहुत सारे लोगों के मन में घर कर गई है। सर्वोच्च न्यायालय से निकले एक वक्तव्य का ही इस आंदोलन की चिंगारी बन जाना विधि-व्यवस्था के प्रति गहरे असंतोष का एक सूचक है। चिंगारी एक वक्तव्य से फूटी, लेकिन आंदोलन को पैदा करने वाला आक्रोश बेहद पुराना था। सड़कों पर व्यक्त इस आक्रोश ने डर और निराशा के वातावरण को, कुछ समय के लिए ही सही, लेकिन दूर तो किया है। और इसमें अहम है जेन-जी की भूमिका।



विक्रांत भिसे, आर 'वी' द पीपुल 4, 2025

एक दिन का नहीं है आक्रोश

हालाँकि इनकी माँगों को विभिन्न तबकों से समर्थन मिला, लेकिन जेन-जी ही इस आंदोलन की धुरी रहा। जेन-जी आखिरकार कौन हैं, इसे लेकर एकमत राय नहीं है। ऐसा माना जाता है कि ये 1996 से 2012-2013 के मध्य पैदा हुए युवा हैं और संचार और सूचना क्रांति के दौरान बड़े हुए हैं। अपने से पहले की पीढ़ी से एक अलग माहौल में पले हैं। ये उस दौर में पैदा हुए जब भूमंडलीकरण अपने शीर्ष पर था। सिर्फ आर्थिक रूप से नहीं, बल्कि सूचना और मोबाइल तकनीक में आए क्रांतिकारी बदलावों ने दुनिया को वास्तव में एक सूत्र में पिरो दिया। ये दुनियाभर में चल रहे घटनाक्रम से परिचित रहते हैं। यह वही दौर था जब भारत नवउदारवादी नीतियों की एक प्रयोगशाला बना। भारतीय राज्य एक स्वघोषित नवउदारवादी राज्य बन चुका था। आर्थिक विकास की परिकल्पना जन-सरोकार अथवा जनता की माँग नहीं, अपितु स्वतंत्र बाज़ारवाद की कट्टरता निर्धारित करने लगी। नवउदारवाद उम्मीदों का एक पिटारा लेकर आया—तीव्र आर्थिक संवृद्धि, रोज़गार सृजन, लोगों की आय में बढ़ोत्तरी, निर्यात में बढ़ोत्तरी इत्यादि। यह पीढ़ी इन सुनहरे वायदों की लोरी सुनते हुए बड़ी हुई है। जब यह पीढ़ी स्कूल में थी, तब [विजन 2020](#) के बुखार की गिरफ्त में पूरा देश था, जिसके तहत भारत को 2020 तक एक विकसित देश बन जाना था। भारत की सच्चाई को गुलाबी रंग में रंगने के लिए इंडिया शाइनिंग जैसे अभियान चलाए गए। लगभग हर चुनाव भारत की नियति बदलने वाला निर्णायक मोड़ लगता था। खासकर 2014 के लोकसभा चुनाव के दौरान भाजपा और उसके समर्थकों ने इस तरह प्रचार किया मानो वे सत्ता में आते ही भ्रष्टाचार और कुशासन की सारी समस्याओं को चुटकी बजाते ही खत्म कर देंगे। भाजपा और मोदी के इंतज़ार में ही भारत अब तक विश्वगुरु और सुपरपावर देश नहीं बन पाया था।

पिछले दशक में एक-एक वादे ने इनके सामने दम तोड़ा है। सबसे क्रूर विडंबना है उन लोकतांत्रिक मूल्यों और संवैधानिक अधिकारों का अवसान जिनकी दुहाई देकर वर्तमान पार्टी सत्ता में आई। इन्होंने कोरोना काल में उच्च आर्थिक संवृद्धि दर के भीतर छुपी आर्थिक बदहाली को उजागर करते शहरों से पलायन करते मज़दूरों, इलाज के अभाव में दम तोड़ते लोगों को देखा है। इनमें से एक बड़ा वर्ग सरकार की प्रज्ञा बनकर जी-हुज़ूरी करने में विश्वास नहीं करता। इन्होंने अपने लोकतांत्रिक अधिकारों का उपयोग करके किसानों को सरकार को घुटने टेकने पर मजबूर करते देखा है। इनके भीतर लोकतांत्रिक नागरिक की मज़बूत इच्छाशक्ति है। यूपीए सरकार के खिलाफ़ व्याप्त असंतोष को आंदोलन तथा चुनावी हार में बदलने का भी यह साक्षी रहा है। 2014 के बाद किए तमाम वादे इसे याद हैं। इसे यह भी एहसास है कि झूठे वादे करना भारत की राजनीति का पुराना शगल है। इनका आक्रोश एक कथन मात्र का नतीजा नहीं है। इनका आंदोलन सालों की निराशा और ठोस बदलाव की तीव्र आकांक्षा से उपजा है।

डेमोग्राफ़िक डिविडेंड से डेमोग्राफ़िक लायबिलिटी तक

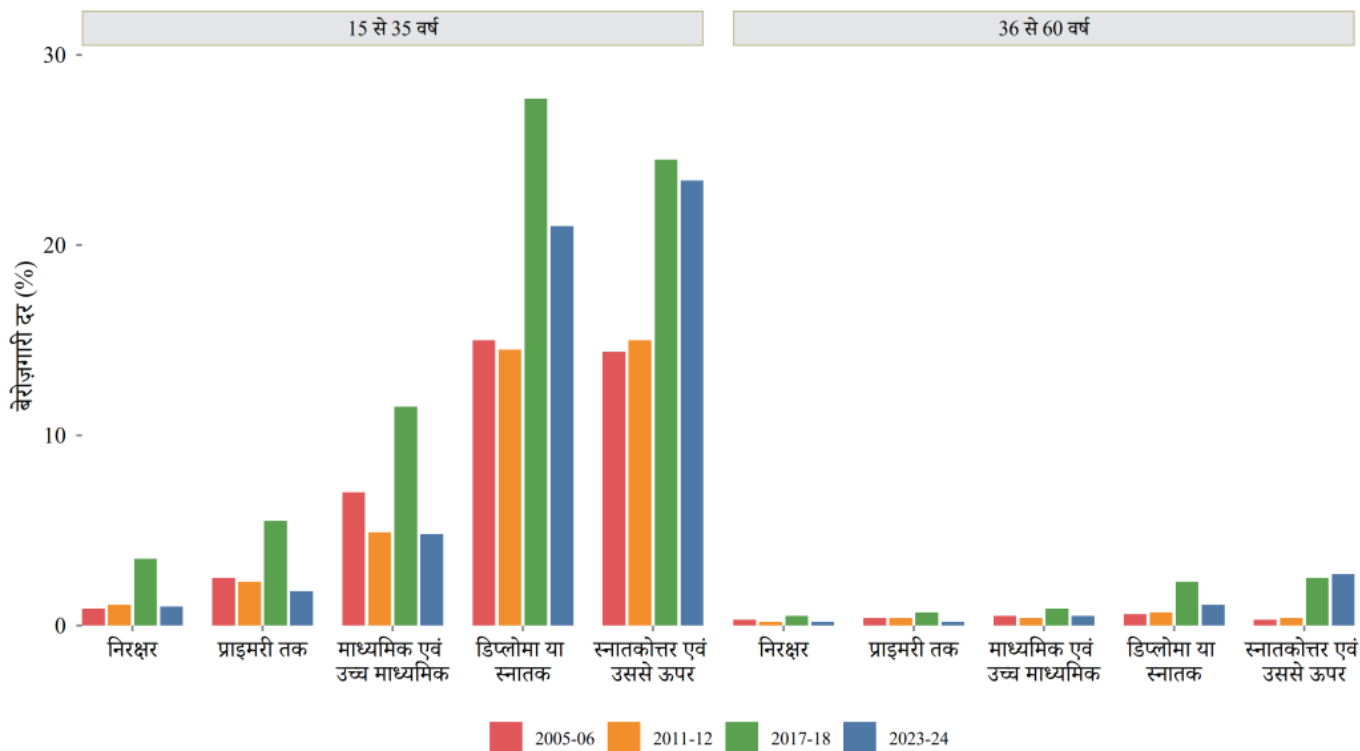
भारत के पास करीब दो दशक पहले एक अद्वितीय मौक़ा आया। इसने जनसंख्या की संरचना के ऐसे दौर में प्रवेश किया जो देशों को सिर्फ़ एक बार मिलता है। इस परिघटना को डेमोग्राफ़िक डिविडेंड के नाम से जानते हैं। इस दौरान कामकाजी उम्र के लोगों की संख्या निर्भर लोगों (बच्चों और बुज़ुर्गों) की तुलना में तीव्र गति से बढ़ती है। सही नीतियों और पर्याप्त अवसरों की बदौलत इस मौक़े का लाभ उठाकर तीव्र आर्थिक संवृद्धि हासिल की जा सकती है। लेकिन, स्वास्थ्य और शिक्षा की जर्जर अवस्था, समुचित रोज़गार के अभाव और लचर प्रशासनिक ढाँचे ने इस अवसर को समस्या में तब्दील कर दिया है।

भारत की कुल जनसंख्या में 65 प्रतिशत [हिस्सा](#) 35 वर्ष से कम उम्र के लोगों का है। ये वो तबक़ा है, जो या तो अपनी पढ़ाई-लिखाई पूरी करके रोज़गार में संलग्न है, रोज़गार के लिए प्रयासरत है, अथवा शिक्षण संस्थानों (स्कूलों, कॉलेजों तथा कोचिंग संस्थानों) से बाहर निकलकर गरिमापूर्ण रोज़गार पाने की आशा रखता है। लेकिन हाल यह है कि युवाओं को रोज़गार नहीं मिल रहा है। स्थिति इतनी खराब है कि सबसे इम्प्लॉयमेंट-अनइम्प्लॉयमेंट सर्वे शुरू किए गए हैं—यानी 80 के दशक से—तब से युवाओं में वर्तमान स्तर की बेरोज़गारी कभी नहीं देखी गई है। यहाँ बेरोज़गारी स्तर का तात्पर्य लेबर फ़ोर्स के उस हिस्से से है जो काम खोज रहा है लेकिन उसे काम नहीं मिल पा रहा है। 15 से 35 वर्ष के बीच के युवाओं में 36 से 60 वर्ष के लोगों की तुलना में बेरोज़गारी कई गुना ज्यादा है। 2023-24 में युवा बेरोज़गारी का स्तर 8 प्रतिशत जबकि ग़ैर-युवा वर्ग के लिए यह मात्र 0.5 प्रतिशत था।

युवा बेरोज़गारी को वर्तमान सरकार युवाओं के ही मत्थे मढ़ देती है। उसका [मानना](#) है कि बेरोज़गारी की वजह युवाओं में कौशल का अभाव है। रोज़गार [मौजूद](#) हैं, लेकिन उन्हें करने के लिए काबिल लोग नहीं मिल रहे हैं। हालाँकि किस सेक्टर में

कुशल लोगों की कमी है, किस तरह के कौशल के लोगों की कमी है, ये किसी को नहीं पता। ऐसे देश में जहाँ एक पद के लिए हजारों लोग प्रतिस्पर्धा करते हैं, नौकरी की एक प्रतियोगी परीक्षा पास करने के लिए लोग सालों तैयारी करते हैं; वहाँ इस तरह का बयान यह दर्शाता है कि सरकारी नीति-निर्माता ज़मीनी हकीकत से कितनी दूर रहते हैं।

15 से 35 वर्ष के युवाओं तथा 36 से 60 वर्ष के लोगों की बेरोज़गारी दर



आँकड़ों का स्रोत : 2005-06 एवं 2011-12 के इंप्लॉयमेंट-अनइंप्लॉयमेंट सर्वे और 2017-18 एवं 2023-24 के पीएलएफ़एस सर्वे से लेखक की गणना

उपरोक्त ग्राफ़ पिछले दो दशकों के दौरान युवाओं में शैक्षिक अवस्था के अनुसार व्याप्त बेरोज़गारी की दर को दिखा रहा है। यह साफ़ है कि युवाओं में बेरोज़गारी की दर शैक्षिक अवस्था बढ़ने के साथ लगातार बढ़ रही है। यह ग्राफ़ सरकारी आँकड़ों पर आधारित है। यह ऐसे दावों के बिल्कुल उलट है जो कहते हैं कि बेरोज़गारी का कारण योग्यता का अभाव है। जबकि यह साफ़ है कि उच्च योग्यता वाले रोज़गार के सृजन का भारी अभाव है। बेरोज़गारी की ऊँची दर यह बता रही है कि उच्च कौशल होने के बावजूद समुचित स्तर का रोज़गार न होने की वजह से युवा रोज़गार की तलाश में अपना समय व्यतीत कर रहे हैं। निम्न कौशल के रोज़गार तो हैं, लेकिन उच्च कौशल वाली नौकरियाँ नहीं हैं।

अर्थव्यवस्था की संरचनात्मक समस्याओं का हल निकालने की कोशिश करने के बजाए इसके लिए जनता को ही ज़िम्मेदार ठहराने की यह फ़ितरत नवउदारवाद के कट्टर बाज़ारवाद की ट्रेनिंग का नतीजा है। स्वतंत्र बाज़ार के नवउदारवादी पैरोकार यह मानते हैं कि सरकार को आर्थिक क्रियाकलापों में कोई दखल नहीं देनी चाहिए। व्यक्ति अपनी परिस्थिति और काबिलियत के अनुसार जो फ़ैसला लेता है वही सर्वश्रेष्ठ सामाजिक परिणाम में परिणत होता है। इस तरह का नज़रिया पहले तो संरचनात्मक और सामाजिक समस्याओं के लिए लोगों के व्यक्तिगत फ़ैसलों को ज़िम्मेदार ठहराता है, और समाधान के लिए आवश्यक सामाजिक/राजनीतिक कदम भी उठाने नहीं देता। यही कारण है कि नवउदारवादी विचारधारा के कट्टर पैरोकारों की वर्तमान सरकार न तो युवा बेरोज़गारी जैसी संरचनात्मक समस्या को स्वीकार करने और न ही इसके समाधान के लिए कोई कदम उठाने हेतु तैयार है। सरकारी अकर्मण्यता ने डेमोग्राफ़िक डिविडेंड के नायाब अवसर को एक ऐसे संकट में तब्दील कर दिया है जिसकी कीमत युवाओं की एक पूरी पीढ़ी चुका रही है।

खस्ताहाल शिक्षा व्यवस्था से अधर में भविष्य

सीमित नवसृजित रोज़गार के अवसर प्रधानतः निम्न वेतन वाले हैं। खासकर निजी क्षेत्र अति निम्न वेतन देता है और सामाजिक सुरक्षा से मज़दूरों को वंचित रखता है। सरकारी नौकरियों के इर्द-गिर्द पनपी अरबों रुपये की कोचिंग इंडस्ट्री रोज़गार और शिक्षा के संकट के लक्षण मात्र हैं। समस्या की जड़ बदहाल शिक्षा व्यवस्था और रोज़गार का संकट है।

निजी क्षेत्र के अति शोषणकारी रोज़गार से बचने के लिए युवा सरकारी नौकरियों को तरजीह देते हैं क्योंकि वहाँ निजी क्षेत्र की तुलना में भरण-पोषण लायक वेतन भी मिलता है तथा सामाजिक सुरक्षा भी। निजीकरण की वजह से सरकारी नौकरियों की संख्या भी उत्तरोत्तर कम होती जा रही है। यही कारण है कि शिक्षा हासिल करने मुख्य मकसद चुनिंदा सरकारी नौकरियों के लिए चुना जाना रह गया है। नौकरी की चाहत रखने वाले सैलाब की वजह से प्रतियोगी परीक्षाओं के स्तर और स्कूलों तथा विश्वविद्यालयों की प्रदान की जाने वाली शिक्षा के बीच एक बड़ा फ़ासला पैदा हो गया है। इसी फ़ासले के बीच पनप रही और विशाल हो रही है कोचिंग इंडस्ट्री। कोचिंग इंडस्ट्री का मुख्य काम है परीक्षा पास करवाना। अगर वो परीक्षाएँ पास नहीं कराएँगे, अधिकाधिक लोगों का चयन नहीं कराएँगे, तो उनके खुद के अस्तित्व पर संकट आ जाएगा। अतः चयनित लोगों की संख्या बढ़ाने के लिए वो कई बार अवैध रास्ते पर भी चलते हैं।

पेपर-लीक़ ऐसा ही एक रास्ता है। इसकी पटकथा लीक़ होने की घटना के बहुत पहले ही लिखी जानी शुरू हो जाती है—जब शिक्षा स्कूलों और विश्वविद्यालयों से हटकर कोचिंग संस्थानों का व्यवसाय बन जाती है; उसका मक़सद लाखों लोगों से मुक़ाबला करके सिर्फ़ एक सीट हासिल करना मात्र रह जाता है। ऊपर से जब सरकार छात्रों की माँगों को नज़रअंदाज़ करके परीक्षा कराने से लेकर सवाल सेट करने तक के सारे काम का केंद्रीकरण करके उसे ठेका प्रथा के भरोसे छोड़े देती है, तब जाकर पेपर लीक़ होने की परिस्थितियाँ तैयार होती हैं। पेपर-लीक़ रोज़गार और शिक्षा की खस्ताहाली, और सरकारी ज़वाबदेही के अभाव का ही एक लक्षण है।

सत्ता से खुलकर सवाल पूछने वाली पीढ़ी

जेन-ज़ी एक चैतन्य पीढ़ी है। यह तकनीकी रूप से दक्ष है। डिजिटल माध्यमों से यह अपने लिए सामाजिक जगहें बनाती है, अपनी पीढ़ी के लोगों के संपर्क में रहती है। इनकी दुनिया इनके पास के भौतिक समाज तक सीमित नहीं है। यह पूरी दुनिया में चल रहे घटनाक्रम से वाकिफ़ रहती है। सोशल मीडिया के इस्तेमाल के मामले में यह अपने से पहली की उस पीढ़ी से भिन्न है जिसने सोशल मीडिया पर परोसी गई ग़लत जानकारियों और नफ़रत-भरे नैरेटिव को नतमस्तक़ होकर स्वीकार किया। ऐसा माना जाता है कि सोशल मीडिया का मैनेजमेंट करके भाजपा ने पूरे देश में अपने एजेंडे के लिए माहौल तैयार किया था। इसने अपनी आँखों के सामने सोशल मीडिया के माध्यम से लोगों को दक्षिणपंथी सूचना सामग्री का उपभोक्ता बनते देखा है। उसी सोशल मीडिया का इस्तेमाल जेन-ज़ी लोकतांत्रिक लामबंदी और सरकार से ज़वाबदेही के लिए कर रहा है। यह अपने लिए एक बेहतर भविष्य चाहता है। उसका आंदोलन भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचनात्मक कमज़ोरियों से पनपा है। यह अपने से पहले की पीढ़ी की तरह अपने भविष्य को कोरे वायदों और प्रशासनिक अक्षमता की वजह से जाया नहीं करना चाहता।

यह भी सच है कि यह शिक्षा और रोज़गार के मूलभूत मुद्दों को अपने आंदोलन के दायरे में लाने से भी हिचक़ रहा है जो वर्तमान संकट की जड़ हैं। इन पर बात किए तथा इसके आधार पर आंदोलन एवं जनभावना तैयार किए बिना सार्थक बदलाव की उम्मीद करना जल्दबाज़ी होगी। उनके आंदोलन ने लोगों के ठोस मुद्दों की राजनीतिक प्रासंगिकता को फ़िर से रेखांकित किया है। पिछले कुछ समय से ऐसा लग रहा था कि आधारहीन नैरेटिव तथा सोशल मीडिया एवं टीवी मीडिया के मैनेजमेंट से राजनीतिक नैरेटिव सेट किए जा सकते हैं। जेन-ज़ी के आंदोलन ने इस मिथक को तोड़ा है और यह दर्शाया है कि संचार के साधन भले ही बदल जाएँ, किंतु जनता के बुनियादी मुद्दे हमेशा प्रासंगिक बने रहते हैं।

उनका आंदोलन दशकों से विद्यमान रोज़ी-रोटी, शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे बुनियादी मुद्दों की अनदेखी का नतीजा है। खासकर शिक्षा और रोज़गार का गहराता संकट, जो अब विस्फोटक रूप ले चुका है, इसके पीछे की प्रमुख वजह है। वे बेहतर अवसर चाहते हैं। वे अपने जन्म से पहले से मौजूद समस्याओं का निराकरण चाहते हैं, सार्थक बदलाव के दौर में जीना चाहते हैं। वे एक बेहतर समाज चाहते हैं। इसके लिए वे अपनी ज़िम्मेदारी सड़कों पर उतरकर निभा रहे हैं। एक लोकतांत्रिक देश के भविष्य के लिए यह अच्छी शुरुआत है।

उमेश यादव